इकाई 6 वैदिक-यज्ञ-मीमांसा

इकाई की रूपरेखा

6.0 उद्देश्य

6.1 प्रस्तावना

6.2 पाकयज्ञ

- 6.2.1 औपासन होम
- 6.2.2 वैश्वदेव
- 6.2.3 पार्वण
- 6.2.4 अष्टका
- 6.2.5 मासिक / मासि श्राद्ध
- 6.2.6 श्रवणा
- 6.2.7 शूलगव

6.3 हविर्याग

- 6.3.1 अग्निहोत्र
- 6.3.2 दर्शपूर्णमास
- 6.3.3 आग्रयण
- 6.3.4 चातुर्मास्य
- 6.3.5 निरूढ़पशुबन्ध
- 6.3.6 सौत्रामणी
- 6.3.7 पिण्डपितृयज्ञ

6.4 सोमयाग

6.5 सारांश

6.6 शब्दार्थ

6.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

6.8 अभ्यास प्रश्न

6.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप–

- वैदिक यज्ञों के यथार्थ स्वरूप से अवगत हो सकेंगे।
- श्रौत-स्मार्त आदि प्रमुख यज्ञों के भेदों को समझ सकेंगे।
- आधुनिक परिप्रेक्ष्य में वैदिक यागों के माहात्म्य का प्रतिपादन कर सकेंगे।
- वैदिक यागों में निहित विविध अर्थवादों का आकलन आधुनिक समयानुसार कर सकेंगे।
- यज्ञ की विभिन्न संस्थाओं के सूक्ष्म रूप से परिचित होकर स्वज्ञाति समूह एवं अन्यान्य स्थलों में विद्यमान जनसामान्य को सम्बद्ध तथ्यों से अवगत करा सकेंगे।

6.1 प्रस्तावना

यज्ञ वैदिक धर्म का आधार है। अग्नि में विविध देवताओं को उद्दिष्ट कर हविष्य/सोमरस का हवन यज्ञ **(द्रव्यं देवता त्यागः कात्यायन श्रौतसूत्र)** के नाम से अभिहित किया जाता है। ब्राह्मण-ग्रन्थों में यज्ञसंस्था का विस्तृत वर्णन है। इस संस्था का सर्वाङ्ग विवेचन कल्पसूत्रों के आलोक में ही हो सकता है। कल्पसूत्रों के मुख्यतः तीन प्रकार हैं– श्रौत, गृह्य एवं शुल्ब। श्रौतसूत्रों में सप्त हविर्याग, सप्त सोमयाग तथा सत्र यागों का वर्णन है। गृह्यसूत्रों में सप्त पाकयागों का तथा अन्य संस्कार आदि गृह्यकर्मों का निरूपण है। शुल्बसूत्रों में अग्निहोत्रशाला, श्रौतागार तथा चयन चितियों का वर्णन प्राप्त होता है। त्रिविध संस्था भेद से याग अधोलिखित है –

क) पाक-यज्ञ संस्था – औपासन होम, वैश्वदेव, पार्वण, अष्टका, मासिक श्राद्ध, श्रवणा, शूलगव।

ख) हविर्यज्ञ संस्था – अग्निहोत्र, दर्शपूर्णमास (दर्शपौर्णमास), आग्रयण, चातुर्मास्य, निरूढ़पशुबन्ध, सौत्रामणी, पिण्डपितृयज्ञ।

ग) सोम संस्था – अग्निष्टोम, अत्यग्निष्टोम, उक्थ्य, षोडशी, वाजपेय, अतिरात्र, अप्तोर्याम।

सप्त सोमयागों के अतिरिक्त श्रौतसूत्रों में अहीन तथा सत्रयाग भी होते हैं, जिनमें सोम संस्थाओं के प्रयोग कर्मों का ही पुनः-पुनः आवर्तन होता है। उपर्युक्त संस्था त्रय का अनुष्ठान आहिताग्नि ही कर सकता है। उस आहिताग्नि का विवाहित तथा जीवित पत्नीक होना अनिवार्य होता है, यतो हि अग्न्याधान में दम्पती का अधिकार होता है, अविवाहित एवं विधुर का नहीं।

स्मार्त एवं श्रौत के भेद से अग्नि 05 प्रकार का है। आवसथ्याग्नि/गृह्याग्नि एवं सभ्याग्नि स्मार्त की है तथा गार्हपत्याग्नि, आहवनीयाग्नि एवं दक्षिणाग्नि इस प्रकार यह 03 श्रौताग्नियाँ हैं, जो अनुष्ठानार्थ पूर्व अर्थात् स्मार्ताधान की अपेक्षा रखती हैं। पूर्वोक्त संस्था त्रय (पाकयज्ञ, हविर्यज्ञ, सोमयज्ञ) का संक्षिप्त विवरण क्रमशः अधोलिखित है –

6.2 पाकयज्ञ

स्मार्ताग्नि में सम्पाद्यमान पाकयज्ञ के अन्तर्गत परिगणित सप्तयागों का विवरण अधोलिखित है –

6.2.1 औपासन होम

सायंकाल और प्रातःकाल दही से, चावलों/अक्षतों से **दध्ना तण्डुलैरक्षतैर्वा** इस प्रकार **पारस्कर गृह्यसूत्र (1.8.3)** में उक्त पदार्थों द्वारा हस्तसम्पाद्य होम **औपासनहोम** है। इस होम में **सायंकाल में अग्नि प्रधान** देवता है तथा **प्रजापति स्विष्टकृत् के स्थानापन्न अङ्ग** देवता है, **प्रातःकाल में सूर्य प्रधान** देवता है तथा **प्रजापति अङ्ग** देवता है। इसका **प्रारम्भ सायंकाल** से किया जाता है। यह सायंकाल से लेकर प्रातःकाल तक **एक कर्म** के रूप में परिगणित होता है, अतः सम्मिलित दोनों का एक फल है। दोनों के पृथक्-पृथक् फल नहीं हैं। अतएव दोनों में द्रव्य और कर्ता एक ही होना आवश्यक है। सपत्नीक पुरुष द्वारा ही यह होम आजीवन किया जाता है।

6.2.2 वैश्वदेव

वैश्वदेव कर्म का नाम है। इस कर्म में विश्व अर्थात् समस्त देवताओं का यजन होता है, अतः **वैश्वदेव** कहलाता है। इसका अपर नाम पंच महायज्ञ है। शतपथ ब्राह्मण (11.5.5.1) में कहा गया है–**देवयज्ञ, भूतयज्ञ, पितृयज्ञ, मनुष्ययज्ञ, ब्रह्मयज्ञ**। यह भी गृहस्थ का नित्य कर्म है। अन्यान्य शाखाओं में सायं और प्रातः में अनुष्ठान का विधान है। माध्यन्दिन शाखा में प्रातःकाल में ही अनुष्ठान का विधान होने से एक ही वेला (प्रातःकाल) में यह अनुष्ठेय है।

6.2.3 पार्वण

प्रत्येक अमावास्या में अनुष्ठेय कर्म पार्वण है। यह भी नित्य है। इसके अन्तर्गत पितृ तथा मातृ उभयपक्ष का ग्रहण होता है। पितृपक्ष में पिता, पितामह, प्रपितामह, माता, पितामही तथा प्रपितामही को पिण्डदान किया जाता है। मातृपक्ष में मातामह, प्रमातामह तथा वृद्धप्रमातामह एवं मातामही, प्रमातामही, वृद्धप्रमातामही को पिण्डदान का विधान है। पार्वण का अर्थ है–**पर्वणि भवम् पार्वणम्।** पर्व शब्द से चतुर्दशी, अष्टमी, अमावस्या और पूर्णिमा का ग्रहण किया जाता है यथा हि –

चतुर्दश्याष्टमी चैव अमावस्या च पूर्णिमा।
पर्वाण्येतानि राजेन्द्र रविसंकान्तिरेव च।।

6.2.4 अष्टका

मार्गशीर्ष पूर्णिमा के अनन्तर तीन अष्टका **ऊर्ध्वमाग्रहायण्यास्तिस्रोष्टकाः** इस पारस्कर गृह्यसूत्र (3.3.1) द्वारा हेमन्त और शिशिर की कृष्णपक्षीय चार अष्टमी तिथियों में अपूप (पूए), गोमांस एवं शाक से इन्द्र (पौष कृष्ण अष्टमी पर अनुष्ठेय), विश्वेदेव (माघ कृष्ण अष्टमी पर अनुष्ठेय), प्रजापति (फाल्गुन कृष्ण अष्टमी पर अनुष्ठेय) तथा पितरों (चैत्र कृष्ण अष्टमी पर अनुष्ठेय) के निमित्त सम्पादनीय अष्टका नामक श्राद्ध कर्म कहलाता है। आश्वलायन गृह्यसूत्र के मत से साग्निक पुरुष को इसे अवश्य करना चाहिये एवंविध ज्ञापन होने पर भी उसमें गोमांसरूप द्रव्य का विधान है और कलियुग में गवालम्भन निषिद्ध है, उसका प्रतिनिधिभूत दूसरा कोई द्रव्य बतलाया नहीं गया अतएव माध्यन्दिन शाखा में उसका लोप ही हो गया है। अन्य शाखानुयायियों का, जिनके लिए मांस का विधान नहीं है, नित्य रूप से ही उसका अनुष्ठान होता है।

6.2.5 मासिक/मासि श्राद्ध

महीने-महीने में सम्पादनार्ह कर्म मासि श्राद्ध है। यतो हि **मासि-मासि वोऽशनम्** ऐसी शतपथ की श्रुति है। यह मूलतः एकोद्दिष्ट श्राद्ध है। एक को लक्ष्य कर विधीयमान श्राद्ध को एकोद्दिष्ट कहते हैं।

6.2.6 श्रवणा

श्रावण शुक्ल पूर्णिमा से प्रारम्भ कर मार्गशीर्ष की पौर्णमासी तक प्रतिदिन सायंकाल सर्पों के निमित्त सम्पादनीय बलिदान श्रवणाकर्म है, **अथातः श्रवणाकर्म** (पारस्कर गृह्यसूत्र 2.14.1)। इसके अन्तर्गत स्थालीपाक तैयार कर अक्षतधान्य को पकाकार उसको पुरोडाश के रूप में पकाकर प्रोक्षण आदि करना चाहिए। एतदनन्तर **अपश्वेतपदाजहि•** प्रभृति मन्त्र से घृत की आहुतियाँ प्रदान की जाती हैं। तदनन्तर

चरु की चार आहुतियाँ प्रदान करने का विधान है। विष्णु, श्रवणा आदि को समन्त्रक आहुति प्रदान के अनन्तर **धानावन्तं•** मन्त्र के द्वारा पिष्ट धान्यों की एक आहुति तथा घृतमिश्रित सत्तू की आहुतित्रय सर्पों के निमित्त प्रदान करने का विधान है।

6.2.7 शूलगव

शूलगव भी **अथ शूलगवः** (पारस्कर गृह्यसूत्र 3.8) इत्यादि से विहित एक कर्म है। यह स्वर्ग, पशु, पुत्र, धन, यश तथा दीर्घायुष्य की प्राप्ति के उद्देश्य से किया जाता था इसमें गाय रूप द्रव्य का हवन रुद्र देवता के निमित्त होता है। कलिकाल में गवालम्भन निषिद्ध होने से इसका भी अनुष्ठान नहीं होता। अन्य शाखा वालों में **ईशानाय स्थालीपाकं श्रपयित्वा** (आपस्तम्ब गृह्यसूत्र 9.13) से गाय के स्थान पर स्थालीपाक का विधान होने से उसका अनुष्ठान होता है।

6.3 हविर्यज्ञ

हविर्याग की प्रमुख सप्त संस्थाओं का संक्षिप्त विवरण अधोलिखित है –

6.3.1 अग्निहोत्र

अग्नि की तृप्ति को उद्दिष्ट कर श्रौताग्नि पर अग्निहोत्र सम्पादित किया जाता है। श्रौताधान कर लेने के अनन्तर यह अनुष्ठेय हो सकता है। **अग्निहोत्रं जुहुयात् स्वर्गकामः** प्रकृत विधिवाक्य के आधार पर अग्निहोत्र के द्वारा स्वर्ग रूप इष्ट का साधन करना चाहिए। एकबार प्रारम्भ करने पर इसका निर्वाह यावज्जीव करना पड़ता है। यह नित्यकर्म की श्रेणी में आता है। आधान का ग्रहण त्रिविध किया जाता है–**होमपूर्वक, इष्टिपूर्वक, सोमपूर्वक।** पर-पर वाले प्रकार में पूर्व-पूर्व वाले की समस्त इतिकर्त्तव्यताओं का समावेश होता है। यह यजमान को स्वयं करना चाहिए, यथा –

सन्ध्याकर्मावसाने तु स्वयं होमं समाचरेत्।
स्वयं होमे फलं यत्स्यान्न तदन्येन जायते।।
होमे यत्फलमुद्दिष्टं जुह्वतः स्वयमेव तु।
हूयमाने तदन्येन फलमर्धं प्रजायते।।

(देवयाज्ञिक पद्धति पृ. 130)

सायं प्रातः को एक कर्म परिगणित किया जाता है **(सायमादिप्रातरन्तमेकं कर्म प्रचक्षते कात्यायन स्मृति 18.1)।** इसके प्रमुख द्रव्य दुग्ध, तेल, दही, सोमरस, लपसी, भात, घी, चावल फल, जल इत्यादि है। स्विष्टकृत् स्थानापन्न प्रजापति अंग देवता है। अग्नि मुख्य देवता है। दोनों समय का द्रव्य एक ही होना चाहिए। इसके अनुष्ठान में दो पक्ष हैं– प्रथम में सायंकाल सूर्यास्त से पूर्व और प्रातःकाल सूर्योदय से पूर्व हवन करने का विधान है। द्वितीय पक्ष में सायंकाल सूर्यास्त के बाद और प्रातःकाल सूर्योदयोपरान्त हवन किया जाता है। इन दोनों पक्षों में से किसी एक का आश्रयण किया जाता है।

6.3.2 दर्शपूर्णमास

सर्वेभ्यो कामेभ्यो दर्शपूर्णमासौ (वैखानस श्रौतसूत्र 14.1) अर्थात् सर्वाभीष्टसिद्ध्यर्थ इस याग का अनुष्ठान किया जाता है। श्रौताधानी यजमान दर्श और पौर्णमास का

क्रमशः अमावस्या और पूर्णिमा को नित्य रूप से अनुष्ठान करता है। अग्नि के परिग्रह के अनन्तर प्रथम बार प्रारम्भ पूर्णिमा से ही किया जाता है।

यजमान, यजमान पत्नी, ब्रह्मा, होता, अध्वर्यु, आग्नीध्र यह छः इस याग को सम्पादित करते हैं। इसमें तीन-तीन दोनों में इस प्रकार छः याग होते हैं। पूर्णिमा के दिन अग्नि के निमित्त आठ कपाल का पुरोडाश, अग्नीषोम हेतु घृत का उपांशु याग एवं अग्निषोम के ही निमित्त एकादश कपाल का पुरोडाश ये तीन होते हैं तथा अमावस्या के दिन अग्नि के निमित्त आठ कपाल का पुरोडाश, इन्द्र हेतु दधियाग तथा इन्द्र के ही निमित्त दुग्ध का तीसरा याग इस प्रकार दोनों मिलाकर छः याग होते हैं। उपर्युक्त छः याग सान्नाय्ययाजी के हैं। आधान के अनन्तर जो सोमयाग कर चुका है वह ही सान्नाय्ययाजी हो सकता है। सान्नाय्य दधि और दूध का वाचक है। यह सोमयाजी हेतु नित्य है। **कामादितरः (कात्यायायन श्रौतसूत्र 4.1.27)** सूत्र से यह ऐच्छिक है। यदि सामान्य (सोमयाजी से रहित) दर्श याग है तो अग्नि का आठ कपाल तथा इन्द्राग्नी का द्वादश कपाल का पुरोडाश तथा मध्य में अग्नीषोम के निमित्त उपांशु याग घृत से करने का विधान है। इन दोनों यागों में अन्वाहार्य दक्षिणा होती हैं। हविर्द्रव्य में व्रीहि एवं यव प्रमुख है।

6.3.3 आग्रयण

नवीन अन्न की उत्पत्ति के अनन्तर, जिसका अयन/अनुष्ठान हो वह आग्रयण है। यह वर्ष में चार बार **(अनयोर्वा अयं द्यावापृथिव्यो रसोऽस्य रसस्य हुत्वा देवेभ्योऽथेममश्नामेति तस्माद्वा आग्रयणेष्ट्या यजते, शतपथ ब्राह्मण 2.3.5.1)** की जाती है। इसका अनुष्ठान शरत् और वसन्त में करना चाहिए। इसमें हवनीय द्रव्य इन्द्राग्नि के लिए पुरोडाश और द्यावापृथिवी के लिए चरु है। विश्वेदेव के निमित्त चरु जौ का होता है। दक्षिणा टूटने पर मरम्मत किया गया रथ/रेशमी वस्त्र, अथवा मधुपर्क/वर्षा में धारण किया गया वस्त्र होती है। यह इष्टि नित्य है। इसके सम्पादन के उपरान्त ही नवीन अन्न भक्षण करना चाहिए इसे नवान्नेष्टि भी कहते हैं।

6.3.4 चातुर्मास्य

यह कर्मचार महीनों **(चतुर्षु मासेषु भवन्ति, कात्यायन श्रौतसूत्र कर्क भाष्य 5.1.1)** में अनुष्ठित होने के कारण चातुर्मास्य कहलाता है। इनमें चार पर्व होते हैं–**वैश्वदेव, वरुणप्रघास, साकमेध और शुनासीरीय।** इसके अन्तर्गत प्रथम पर्व का फाल्गुन की पूर्णिमा **(फाल्गुन्यां पौर्णमास्यां प्रयोगश्चातुर्मास्यानाम्। वैश्वानरीयपार्जन्येष्टिः पूर्वस्यां पौर्णमास्याम्। पर्जन्याय यस्य व्रते। उत्तरस्यां वैश्वदेवम्। शांखायन श्रौतसूत्र 3.13.1-5)** में अनुष्ठान करना चाहिये। तदनन्तर चार मास व्यतीत होने पर आषाढ़ की पूर्णिमा **(आषाढ्यां वरुणप्रघासाः। शांखायन श्रौतसूत्र 1.13.8)** को दूसरा पर्व, तदनन्तर चार मास व्यतीत होने पर कार्तिक की पूर्णिमा **(कार्तिक्यां साकमेधाः। शांखायन श्रौतसूत्र 3.15.1)** को तीसरा पर्व, तदुपरान्त चार मास होने पर फाल्गुन शुक्ल प्रतिपदा **(साकमेधैरिष्ट्वान्वक्षं शुनासीर्यम्। माघ्यां वा पौर्णमास्याम्, शांखायन श्रौतसूत्र 3.18,17-18)** को चौथा पर्व करना चाहिये। एवंविध पुनः-पुनः आवृत्ति करनी चाहिये। प्रत्येक पर्व का संक्षिप्त विवरण अधोलिखितानुसार है –

प्रथम पर्व (वैश्वदेव) – इस प्रथम पर्व में अग्नि देवता का अष्ट कपाल पुरोडाश, सोम का चरु, सविता का अष्ट कपाल/द्वादश कपाल पुरोडाश, सरस्वती का चरु, पूषा को आटे का चरु, केवल मरुतों का/स्वतवद्गुणविशिष्ट मरुतों का सप्तकपाल

पुरोडाश, विश्वेदेव के लिए पयस्या (फटे हुए दूध का तरल अंश), द्यावापृथिवी का एककपाल पुरोडाश ये आठ हवि होते हैं। इन यागों में दर्शपूर्णमास प्रकृति हैं, इसलिए ये पृथक् धर्मवाले नहीं कहे जाते हैं। केवल प्रयाज और अनुयाजों में **नवप्रयाजं नवानुयाजम्** इस सूत्र से नवत्व **त्रीणि समिष्टयजूंषि** और वाजि देवता वाला याग यह विशेष है। इसी वैश्वदेव पर्व के धर्मों की अन्य पर्वों में अनुवृत्ति होती है। इसके अन्तर्गत विश्वेदेव सम्बन्धी आमिक्षा याग होता है वह अन्य आमिक्षा यागों की प्रकृति है। इसमें ऋत्विक् दर्शपूर्णमास के अनुसार होते हैं।

द्वितीय पर्व (वरुणप्रघास) – वैश्वदेव में जितने हविर्द्रव्य कहे गये हैं, उनमें से पहले के पाँच हविर्द्रव्यों के अतिरिक्त चार हविर्द्रव्य और होते हैं– इन्द्राग्निदेवत्य द्वादशकपाल पुरोडाश, वरुण के लिए आमिक्षा, मरुत् के लिए आमिक्षा, प्रजापति (ब्रह्मा) के लिए एककपाल पुरोडाश। इसमें दो वेदियाँ होती हैं– दक्षिण और उत्तर। ऋत्विक् वैश्वदेव पर्व के अनुसार ही होते हैं। एक प्रतिप्रस्थाता अधिक होता है। वही दक्षिण वेदी में होने वाले कर्मों को करता है। इस पर्व में और साकमेध पर्व में उत्तरवेदी और अग्नि प्रणयन अधिक है। इसी प्रकार करम्भ पात्रों का निर्माण और उनका होम इस पर्व में अधिक है। दम्पति तीर्थ में स्नान करते हैं। इस पर्व की दक्षिणा धेनु, अश्व अथवा छः/बारह गायें हैं, ऐसा विकल्प है।

तृतीय पर्व (साकमेध) – कार्तिक मास की पूर्णिमा को साकमेध नामक पर्व का अनुष्ठान होता है। पहले दिन प्रातःकाल अनीकवतीष्टि उद्धरणादि से लेकर कर्मसमाप्ति के कर्म तक होते हैं। उसमें अनीकवान् अग्नि देवता, अष्टाकपाल पुरोडाश हवनीय द्रव्य और अन्वाहार्य दक्षिणा है। मध्याह्न में सान्तपनेष्टि होती है। उसमें सान्तपन मरुत् देवता, चरु हवनीय द्रव्य और अन्वाहार्य दक्षिणा है। सायंकाल गृहमेधीय इष्टि होती है, उसमें गृह-मेधीय मरुत् देवता, दूध में पका हुआ पायस (खीर) चरु हवनीय द्रव्य और वृषभ दक्षिणा है। इसमें सायंकाल और प्रातःकाल लपसी से अग्निहोत्र होम करना चाहिये।

तदुपरान्त दूसरे दिन पूर्णिमा को प्रातःकाल उद्धरण से लेकर कर्म समाप्तिपर्यन्त हर्विहोम होता है। इसमें सब क्रियाएँ अमन्त्रक करनी चाहिये। इसमें भी वृषभ ही दक्षिणा है। तदनन्तर क्रीडनीयेष्टि होती है। उसमें क्रीडावान् मरुत् देवता हैं, हवनीय द्रव्य पुरोडाश है, अन्वाहार्य दक्षिणा है। तदनन्तर अदितीष्टि होती है। उसमें अदिति देवता का हवनीय द्रव्य चरु और अन्वाहार्य दक्षिणा है। उसके बाद महाहवि नामक इष्टि उत्तर वेदी में करनी चाहिये। एतदनन्तर पितृयज्ञ (पित्र्येष्टि) होती है। एतदर्थ दक्षिण दिशा में दक्षिणमुख विहार (मण्डप) बनाया जाता है। सोम वाले पितर अथवा पितृमान सोम, बर्हिषद्पितर एवं अग्निष्वात्ता पितर देवता हैं। षट्कपाल पुरोडाश, धाना (भुने हुए जौ) और मन्थ क्रमशः हवनीय द्रव्य हैं। तदुपरान्त त्र्यम्बकेष्टि होती है इसमें रुद्र (त्र्यम्बक) देवता हैं, एककपाल में संस्कृत चार पुरोडाश हवनीय द्रव्य हैं। एक ही अध्वर्यु ऋत्विक् है। इसमें दक्षिणा वृषभ है।

चतुर्थ पर्व (शुनासीरीय) – तदनन्तर शुनासीरीय नाम का चौथा पर्व होता है। इसमें पौर्ण-मास के सब धर्म होते हैं। इसमें भी वैश्वदेव पर्व में कहे गये पाँच हविर्द्रव्य पूर्ववत् होते हैं। इनके अतिरिक्त शुनासीर (वायु और आदित्य) के लिए द्वादश कपाल पुरोडाश, वायु के लिए दूध/लपसी, सूर्य के लिए एककपाल पुरोडाश है और दक्षिणा छः बैलों से युक्त हल अथवा बड़े-बड़े दो बैल। सौर की दक्षिणा सफेद घोड़ा/गाय है।

चातुर्मास्य याग में दो पक्ष हैं, उत्सर्ग पक्ष और जीवनपर्यन्त पक्ष। एक बार चातुर्मास्यों से यज्ञकर तदुपरान्त जो पशु, सोम आदि से यह करता है, फिर चातुर्मास्यों से यज्ञ नहीं करता वह उत्सर्ग पक्ष है। चातुर्मास्यों से ही प्रतिवर्ष जीवन भर यजन करना चाहिए, यह यावज्जीवन पक्ष है।

चातुर्मास्य त्रिविध होते हैं– ऐष्टिक, पाशुक और सौमिक। उनमें से पहले जिनके विषय में अवगत कराया गया है, वे ऐष्टिक हैं। ऐष्टिक तीन तरह के होते हैं– सांवत्सरिक, पाञ्चाहिक और ऐकाहिक।

6.3.5 निरूढ़पशुबन्ध

प्रतिवर्ष वर्षा ऋतु **(पश्विज्या संवत्सरे संवत्सरे प्रावृषि, कात्यायन श्रौतसूत्र 6.1.1)** में इसका अनुष्ठान करना चाहिए। उत्तरायण एवं दक्षिणायन **(आवृत्तिमुखयोर्वा कात्यायन श्रौतसूत्र 6.1.2)** के प्रारम्भ में दो बार विकल्प से इसका अनुष्ठान किया जाता है। इसमें छाग की वपा हवनीय द्रव्य है। इसमें इन्द्राग्नि सूर्य/प्रजापति वैकल्पिक देवता हैं। इसमें मैत्रावरुण नामक ऋत्विक् अतिरिक्त होता है। यह अग्निष्टोम प्रकृति का है। पशुबन्धनार्थ काष्ठ यूप खैर/बेल का होता है। यह अष्टकोणीय होता है। इसमें 11 प्रयाज एवं 11 ही अनुयाज का विधान है। प्रथम दश प्रयाजों का यजन पशु जब यूप में बंधा हो तब तथा अवशिष्ट एक का संज्ञपन के बाद किया जाता है। इसमें गौ आदि पशु निर्धारित है। धेनु अथवा वर वैकल्पिक दक्षिणा है।

6.3.6 सौत्रामणी

सुत्राम्ण इयं सौत्रामणी इस व्युत्पत्ति से इन्द्र देवता के निमित्त सम्पाद्यमान याग को सौत्रामणी याग कहते हैं। इसके प्रधान देवता इन्द्र हैं। अतः इन्द्रयाग भी कहा जाता है। स्वतन्त्र और अंगभूत दो प्रकार से इसका अनुष्ठान किया जाता है। अग्निचयन के सम्बन्ध में अंगभूत होकर अनुष्ठित होता है। यह पुनः नित्य, नैमित्तिक के भेद से तीन प्रकार का होता है। किसी उद्देश्य से रहित नित्य, यह नित्य ही सप्त हविः संस्था में परिगणित है। सोम के वमन होने पर **(सोमवामिनाम्, कात्यायन श्रौतसूत्र 19.1.2)** अनुष्ठित नैमित्तिक तथा ऋद्धिप्रापणार्थ **(ब्राह्मणयज्ञः सौत्रामण्यृद्धिकामस्य, कात्यायन श्रौतसूत्र 19.1.1)** अर्थात् फलाकांक्षा से युक्त काम्य होता है। ऐसी स्थिति में इसे ब्राह्मण यज्ञ कहते हैं।

चरक एवं कोकिल सौत्रामणी के दो प्रकार हैं। इस याग में अश्वि के निमित्त अज, सरस्वती के निमित्त वृषभ स्थानापन्न मेषी एवं इन्द्र के लिए वृषभ का विधान प्राप्त होता है। सौत्रामणी, इष्टि के रूप में तथा पशुबन्ध के रूप में विहित होने के कारण यह उभयात्मक है। अग्निचयनांगभूत अनुष्ठान त्रैवर्णिक कर सकते हैं एवं ऋद्धि के निमित्त यह केवल ब्राह्मण द्वारा ही अनुष्ठेय है। यह राज्यच्युति होने पर पुनः राज्य प्राप्ति एवं पशु के निमित्त भी अनुष्ठित किया जाता है।

6.3.7 पिण्डपितृयज्ञ

मासि मास्येव पितृभ्यः शतपथ ब्राह्मण (2.3.4.8) के इस वचन के आधार पर अमावास्या **(अपराह्णे पिण्डपितृयश्चन्द्रादर्शने मावास्यायाम्, कात्यायन श्रौतसूत्र 4.1.1)** के दिन यह अनुष्ठान होता है। यह कृत्य स्वतन्त्र है क्योंकि इसके अनुष्ठान का समय निश्चित है– **पितृयज्ञः स्वकालात्वादनङ्गंस्यात्** (जैमिनीय सूत्र 4.4.19)। इसके अन्तर्गत ओदन के पिण्ड से पितृगण की उपासना की जाती है। यह ओदन का

पाक दक्षिणाग्नि में होता है। अग्निहोत्री के लिये यह कार्य नित्य है। यदि अग्निहोत्री का पिता जीवित हो तो वह होमान्त ही पिण्डपितृयज्ञ करे अथवा नहीं करे एवंविध शास्त्र व्यवस्था है।

6.4 सोमयज्ञ

सोमरस की आहुति जिस याग में दी जाती है, उसे सोमयाग कहा जाता है। सोम की प्रमुख सप्त संस्था के अतिरिक्त भी अग्निचयन याग, क्रतु, सत्र, मेध प्रभृति भी सोम के ही भेद-प्रभेद हैं।

क) उपर्युक्तानुसार प्रमुख सप्त सोम संस्था अधोलिखित हैं–

1. **अग्निष्टोम** – **सर्वकामोऽग्निष्टोमः** समस्त कामनाओं की सिद्धि हेतु यह अग्निष्टोम याग किया जाता है। ज्योतिष्टोम **(त्रिवृत्, पंचदश, सप्तदश और एकविंश ये चार स्तोम ज्योति कहलाते हैं, ज्योति जिसके स्तोम हों वह ज्योतिष्टोम है)** की चार संस्था है। जिनमें अग्निष्टोम यह सोम की सप्त संस्थाओं में प्रथम है। यह संस्था का नाम स्तोत्र परक होता है, अन्त में जिस स्तोत्र का गान होता है, उसी के आधार पर संस्था का नाम होता है। स्तोत्र द्वारा अग्निदेवता की स्तुति की जाती है। यह सोम याग की प्रकृति है। अग्निष्टोम में **यज्ञायज्ञा वो अग्नये** इस ऋचा का गान होता है। इसका अनुष्ठान वसन्त ऋतु में किया जाता है। इसमें आरम्भ का दिन, दीक्षा का दिन और सुत्या का दिन इस प्रकार तीनों दिन शुभ होने चाहिए। यह पाँच दिवस में सम्पन्न होता है। प्रायशः यह शुक्ल पक्ष की एकादशी से पूर्णिमापर्यन्त किया जाता है। इसमें गणानुसार अधोलिखित षोडश ऋत्विक् होते हैं –

अध्वर्युगण	**ब्रह्मगण**	**होतृगण**	**उद्गातृगण**
1. अध्वर्यु	1. ब्रह्मा	1. होता	1. उद्गाता
2. प्रतिप्रस्थाता	2. ब्राह्मणाच्छंसी	2. मैत्रावरुण	2. प्रस्तोता
3. नेष्टा	3. आग्नीध्र	3. अच्छावाक्	3. प्रतिहर्ता
4. उन्नेता	4. पोता	4. ग्रावस्तुत्	4. सुब्रह्मण्य

उपर्युक्तानुसार ही दक्षिणा भी अधिक/न्यून होती है।

2. **अत्यग्निष्टोम** – सोमयाग की अत्यग्निष्टोम संज्ञक यह द्वितीय संस्था है**(षडुत्तरेऽत्यग्निष्टोम उक्थ्यः, षोडशी, वाजपेयोऽतिरात्रोप्तोर्यामः कात्यायन श्रौतसूत्र 10.9.27)।** यह अग्निष्टोमयाग की विकृति **(उक्थ्यषोडश्यतिरात्राणामग्निष्टोमविकारत्वम्। अत्यग्निष्टोमस्य च देवयाज्ञिक पद्धति पृष्ठ 379)** है। इसमें सपत्नीक यजमान एवं सोलह ऋत्विज याग का कार्य सम्पादित करते हैं। विशेष विधि को छोड़कर शेष सब विधि प्रकृतिभूत अग्निष्टोमयागवत् होती है।

यजमान के सङ्कल्पोपरान्त अध्वर्यु यागकृत्य प्रारम्भ करता है। इसमें एक आग्नेय पशु अज का आलम्भन होता है। इस याग में तेरह ग्रहपात्र, तेरह शस्त्र का पाठ और तेरह स्तोत्र का गान होता है। ग्रहपात्र के आसादन के समय खादिर काष्ठ का चतुरस्र मुँहवाला, षोडशी संज्ञक, एक ग्रहपात्र आसादित किया जाता है। इसे आश्विन ग्रहपात्र से पश्चिम की ओर रखना चाहिए। तीनों सवन में से किसी एक

सवन में आग्रयणग्रहण के अनन्तर/पृष्ठ्योपाकरण से पूर्व इस पात्र में समन्त्रक सोमरस का ग्रहण होता है। तृण स्पर्श से स्तोत्रोपाकरण होता है। शस्त्र पाठ के समय अध्वर्यु ओथामो दैव, मोदामो दैव और अन्त में प्रणव से प्रतिगर किया जाता है। षोडशी ग्रहपात्र से इन्द्र के निमित्त किये गये याग का इन्द्र ही के निमित्त त्याग करना चाहिए। शेष अग्निष्टोमवत् याग की समाप्ति होती है। अन्त में याग के निमित्त एक सहस्र ब्राह्मण भोजन कराना चाहिए।

3. **उक्थ्य**—यह सोमयाग की उक्थ्यसंज्ञक याग तीसरी संस्था है। यह अग्निष्टोमयाग की विकृति **(उक्थ्यषोडश्यतिरात्राणामग्निष्टोमविकारत्वम्, देवयाज्ञिक पद्धति पृष्ठ 379)** है। **उक्थ्येन पशुकामो यजेत (सत्याषाढ़ श्रौतसूत्र 9.7)** पशु की अभिलाषा से उक्थ्ययाग किया जाता है। यजमान ससङ्कल्प इसे प्रारम्भ करता है। इसमें अग्नि के लिए एक और इन्द्र के लिए एक इस प्रकार दो अज पशु आवश्यक है। इसी के अनुसार पाशुक पात्रासादन करना चाहिए। इस याग में ग्रह, स्तोत्र और शस्त्र इन तीनों की संख्या पन्द्रह रहती है।

पुरोडाश के क्रम में अग्नि का अष्ट कपाल का, इन्द्राग्नी का बारह कपाल का रहता है। अङ्गावदानश्रपण के निमित्त दोनों हृदयों को एक ही शूल में विद्ध कर तपाया जाता है। एक ही उखा का प्रयोग किया जाता है।

पशु के अङ्गों के श्रपण के समय एक से दूसरे का मिश्रण नहीं होना चाहिए। एतदर्थ एक पशु के अङ्गों को वस्त्र से बाँधकर श्रपण किया जाता है। शेष विधान प्रकृतिस्वरूप अग्निष्टोम के समान किया जाता है।

4. **षोडशी** – षोडशी सोमयाग की चतुर्थ संस्था है। यह भी अग्निष्टोमयाग की विकृति है। विशिष्ट विधान को छोड़कर शेष कृत्य प्रकृतिवत् होते हैं। **षोडषीनां वीर्यकामः(सत्याषाढ़ श्रौतसूत्र 9.7)** इस याग को वीर्य कामनार्थ किया जाता है।

यजमान ससङ्कल्प **(चतुष्टोमेन रथन्तरपृष्ठेन हिरण्यशतगवदक्षिणेन वासोऽश्वदक्षिणेन च षोडषिसंस्थेन ज्योतिष्टोमेनाहं यक्ष्ये)** यागारम्भ करता है। इसमें पीतमुखी एवं कृष्णकर्णयुक्त गो से सोमक्रयण होता है। इसमें ग्रह, स्तोत्र और शस्त्र सोलह होते हैं। ग्रहपात्रों में षोडशीसंज्ञक एकपात्र खैर की लकड़ी का, चतुरस्र मुँह वाला, अधिक होता है। इस याग में दो अज और एक मेष अपेक्षित है। अग्नि के लिए अज, इन्द्राग्नी के लिए अज और इन्द्र के लिए मेष होता है। आग्रयण ग्रह के अनन्तर षोडशीग्रह का विधान होता है। स्तोत्र के उपाकरण के समय पश्चिमाभिमुख कृष्ण अश्व खड़ा करना चाहिए। दर्भ और हिरण्य से स्तोत्र का उपाकरण किया जाता है।

इस याग में विजातीय पशु रहने के कारण अङ्गश्रपणादि विधान में एकीकरण नहीं होना चाहिए। एतदर्थ उखा, वपाश्रपणी प्रभृति यज्ञायुधों की पृथक् व्यवस्था आवश्यक है। क्रमशः अग्नि, इन्द्राग्नी और इन्द्र देवता के निमित्त सवनीय याग होता है। याग की समाप्ति होने पर एक सहस्र ब्राह्मण भोजन होता है। याग के अनन्तर सायंकालीन हवन से अग्निहोत्र हवन का प्रारम्भ होता है। द्वितीय दिवस प्रातःकाल से प्रतिदिन अग्निहोत्र हवन करना उचित होता है।

5. **वाजपेय** – यह सोम की पंचमी संस्था है। यह षोडशी की विकृति है। **वाजपेयेनेष्ट्वा सम्राड् भवति (शतपथ ब्राह्मण 5.1.1.14)** के अनुसार यह साम्राज्य की कामना से किया जाता है। इसका अनुष्ठान ब्राह्मण एवं क्षत्रिय

आहिताग्नि कर सकते हैं। यह करने से सम्राट् की उपाधि प्राप्त होती है। यह शरद् ऋतु **(शरदि वाजपेयः, शांखायन श्रौतसूत्र 15.1.1)** में अनुष्ठित किया जाता है। इसके पूर्व एवं पर में बृहस्पति सव अनुष्ठान करने का विधान है जिसे परियज्ञ कहा जाता है।

6. **अतिरात्र** – यह सोम की षष्ठी संस्था है। यह अग्निष्टोम की प्रकृति से युक्त होता है। **अतिरात्रेण ब्रह्मवर्चसकामः (सत्याषाढ श्रौतसूत्र 9.7)**, यह ब्रह्मवर्चस की कामना से अनुष्ठित किया जाता है। इसमें ग्रह, स्तोत्र तथा शस्त्र की संख्या 39 होती है। इस याग में चार पशु होते हैं। प्रथम अग्नि हेतु अज, द्वितीय इन्द्राग्नी हेतु अज, तृतीय इन्द्रार्थ मेष तथा चतुर्थ सरस्वती हेतु मेषी। पशुओं को यूप में नियोजित किया जाता है। क्रमशः संज्ञपन और प्राणशोधन भी किया जाता है। यागान्त में एक सहस्र ब्राह्मणों को भोजन कराया जाता है।

7. **अप्तोर्याम** – सोम की यह अन्तिम और सप्तमी संस्था है। यह अतिरात्र की विकृति है। विशेष विधियों को छोड़कर शेष विधि प्रकृतिवत् होती है। **अप्तोर्यामेनपशुकामः (सत्याषाढ श्रौतसूत्र 9.7)**, पशु प्राप्ति की कामना हो तो अतिरात्रयाग किया जाता है। इस याग में ग्रह, स्तोत्र और शस्त्र तैंतीस होते हैं। यजमान सङ्कल्पपूर्वक याग का प्रारम्भ करता है। इस याग में एक, तीन, बारह अथवा यथेष्ट दीक्षा होती है। सवनीय पशु अग्नि का अज, इन्द्राग्नी का अज, इन्द्र का मेष और सरस्वती की मेषी होती है। अतिरात्रवत् समस्त पाशुक विधान किया जाता है। माहेन्द्रस्तोत्र का रथ के चलने के शब्द, अरणी, दुन्दुभि के शब्द और दर्भ से उपाकरण किया जाता है। इस याग में उद्गाता के ऊरु पर अरणी रखकर अग्निमन्थन होता है। होता के शस्त्रपाठ के समय न्यूङ्खपूर्वक प्रतिगर होता है। शेष विधि अतिरात्रयाग के समान सम्पन्न होती है।

ख) सोम की प्रमुख सप्त संस्था के अतिरिक्त अन्य भी भेद दृष्टिगोचर होते है किन्तु इन सब में प्रकारान्तर से कतिपय पूर्वोक्त प्रकृति/विकृति का ही समावेश है। सोमयाग के अन्य प्रमुख भेद अधोलिखित हैं–

1. **अग्निचयन** – जिसके अन्तर्गत विशेष विधिपूर्वक इष्टका जमा कर चिति (वेदी) का निर्माण किया जाता है, वह अग्निचयन याग कहलाता है। **इष्टकाभिरग्निं चिनोति, इति च आरोहणप्रोक्षणे स्थलस्योच्येते** (कात्यायन श्रौतसूत्र कर्क भाष्य 16.1.1) के अनुसार अग्नि का आधारभूत स्थलविशिष्ट चिति का ग्रहण किया जाता है। प्रकृत में आहवनीय स्थानीय उत्तरवेदि के स्थान पर चिति निर्माण किया जाता है। प्रत्येक चिति के 05 प्रस्तार होते है। कामना के भेद से पृथक्-पृथक् संज्ञा एवं आकार वाली चितियों का निर्माण किया जाता है। चिति निर्माणार्थ विविध प्रकार की इष्टका का भी निर्माण किया जाता है यथा– वक्रेष्टका, जंघामात्री, त्रिग्राहिणी, बृहती, पद्या, अर्द्धपद्या, पादोनपद्या, पादभागा, पूर्णोत्सेधा, अर्धोत्सेधा, अर्धबृहती इत्यादि।

2. **गवामयन सत्र** – गायों के माध्यम से अनुष्ठेय होने के कारण यह गवामयन कहलाता है, **गोभिरनुष्ठितत्वाद् गवामयनम्।** इसका आरम्भ माघ कृष्ण अष्टमी, माघ शुक्ल एकादशी, फाल्गुन पौर्णमासी अथवा चैत्रपूर्णिमा को आरम्भ होता है। आरम्भ से 12 दीक्षा तथा 12 ही उपसद होते हैं। इस प्रकार 24 दिन होते हैं। सत्र याग मुख्यतः 12 दिवस से 1000 वर्ष तक की अवधि के होते हैं।

3. **राजसूय** – इसका अनुष्ठान केवल अभिषिक्त क्षत्रिय ही कर सकता है। इस याग के अनुष्ठान से **राट्** (राजा) की उपाधि प्राप्त होती है। इसके अन्तर्गत अनुमत्यादि इष्टियाँ, मल्हादि पशुयाग और पवित्रादि सोमयाग होते हैं। यह फाल्गुन शुक्ल प्रतिपदा से आरम्भ किया जाता है। इसमें सर्वप्रथम अनुष्ठेय सोमयाग की **पवित्र** संज्ञा है। यह आठ दिवस में पूर्ण होता है। राजसूय में आहत्य 449 इष्टि, 02 पशुयाग, 08 सोमयाग तथा 07 दर्विहोम यह राजसूय पद से वाच्य है। इसका अनुष्ठान काल 33 मास का होता है।

4. **अश्वमेध** – यह याग सार्वभौम क्षत्रिय राजा ही अनुष्ठित कर सकता है। सर्वविध कामना पूर्ति हेतु यह किया जाता है। ब्रह्महत्या प्रभृति समस्त महापातक भी इस याग के अनुष्ठान से नष्ट हो जाते हैं। यह अग्निष्टोम की विकृति की प्रकृति से युक्त होता है। इसका सर्वप्रथम अनुष्ठान प्रजापति ने किया था यथा **–प्रजापतिकामयत• तेनाऽयजत (शांखायन श्रौतसूत्र 16.1.1)।**यह फाल्गुन शुक्ल अष्टमी/नवमी से प्रारम्भ किया जाता है। ग्रीष्म ऋतु में शुक्ल पक्ष की पंचमी को भी इसका प्रारम्भ कहा जाता है।

5. **पुरुषमेध** – यह उत्कृष्ट पद प्राप्ति हेतु किया जाता है। इसमें 23 दीक्षा, 12 उपसद एवं 05 सुत्या होती हैं। यह चैत्र शुक्ल दशमी को प्रारम्भ किया जाता है। 11 यूप में ग्यारह अग्निषोमीय पशु का नियोजन किया जाता है। यजमान यदि ब्राह्मण हो तो सर्वमेधवत् यदि क्षत्रिय हो तो अश्वमेधवत् दक्षिणा का प्रावधान है। यह 40 दिवस में पूर्ण होता है।

6. **सर्वमेध** – समस्त कामनाओं की सिद्धि हेतु यह किया जाता है। इसमें द्वादशाह के नियमों का अतिदेश होता है। इसके अन्तर्गत 12 दीक्षा, 13 उपसद एवं 10 सुत्या होती है। 17 मुष्टिका अप्रसारित हस्त का एक यूप होता है। दक्षिणा पुरुषमेधवत् होती है। यह 34 दिवस में पूर्ण होता है।

7. **पितृमेध** – आहिताग्नि की मृत्यु के अनन्तर इसका सम्पादन पुत्र, पौत्र प्रभृति द्वारा किया जाता है। पितृमेध की स्मृतिस्वरूप चिति को देखने से जिसकी अस्थि पर चिति बनी होती है, उस मृत आहिताग्नि की कीर्ति चिरस्थायिनी होती है यथा **–पितृमेध संवत्सरास्मृतौ (कात्यायन श्रौतसूत्र 21.3.1)।** हस्त, स्वाति एवं पुष्य नक्षत्र, अमावस्या, माघ अथवा ग्रीष्म, शरद् ऋतु में यह अनुष्ठान प्रशस्त है। इसका अनुष्ठान त्रैवर्णिकों द्वारा किया जाता है। इसमें केवल एक अध्वर्यु ऋत्विक् होता है। यह अपसव्य विधि से किया जाता है।

8. **एकाह** – जिस क्रतु में एक/अनेक दीक्षा, तीन/बारह उपसद और एक सुत्या का क्रम है उसे एकाह कहते हैं, यथा– **एका दीक्षा तिस्रो वा. (देवयाज्ञिक पद्धति पृ. 705)।** इसके अन्तर्गत एक यजमान सोलह ऋत्विक् और उपर्त्विक् कार्य करते है। अग्निष्टोम/उक्थ्य/षोडशी एवं अतिरात्र में से किसी एक का परिग्रह होता है। उत्तरायण के किसी पूर्व पक्ष में शुभ दिवस एवं शुभ नक्षत्र पर इसका प्रारम्भ होता है।

9. **द्वादशाह** – यह सत्र एवं अहीन दोनों प्रकार का है। सत्रात्मक में कर्ता केवल ब्राह्मण होता है। इसमें 17 से 24 अग्निहोत्री जो अग्निष्टोम का अनुष्ठान कर चुके हों अधिकारी होते हैं। इसमें सभी यजमान हैं, अतः दक्षिणा नहीं होती है। फल सभी को प्राप्त होता है।

अहीनात्मक में एक, दो अथवा बहुत यजमान होते हैं। अग्निष्टोम के समान अध्वर्यु एवं ऋत्विक् कार्यकर्ता होते हैं। अतः कई सहस्र गाय दक्षिणास्वरूप होती है। फल मात्र यजमान को ही प्राप्त होता है। यह 36 दिवस तक चलता है।

10. **अहीन** – दो से ग्यारह दिवस तक की अवधि में सम्पन्न योग्य अहीन होता है। इसके अन्तर्गत एक/अनेक यजमान होते हैं। कात्यायन श्रौतसूत्र के 23वें अध्याय में इसके तैंतीस प्रकार बताये गये हैं।

6.5 सारांश

अग्निहोत्रं जुहुयात् स्वर्गकामः, दशपूर्णमासाभ्यां स्वर्गकामो यजेत, सोमने यजेत स्वर्गकामः प्रभृति विधिवाक्य श्रौतयागों की फलश्रुति प्रकाशित करते हैं। अग्नि का आधान करने के लिए व्यक्ति का त्रैवर्णिक होना तथा विवाहित होना आवश्यक है। विवाह के उपरान्त दम्पती के एक पुत्र उत्पन्न हो जाये, तदनन्तर ही वह अग्नि का आधान करने का अधिकारी होता है, **जातपुत्र कृष्णकेश अग्नीन् आदधीत (कात्यायन श्रौतसूत्र भूमिका)।** अग्नि के भी पाँच स्वरूप हैं – आवसथ्याग्नि एवं सभ्याग्नि, इन दोनों का आधान, विवाह के पश्चात् वधू प्रवेश काल में किया जाता है **(आवसथ्याधानं दारकाले पारस्कारगृह्यसूत्र 1.2.1)।** तदनन्तर श्रौताग्नियों गार्हपत्य, आहवनीय तथा दक्षिणाग्नि का आधान पुत्र जन्म के अनन्तर कृष्ण केश रहते हुए करना चाहिए।

आवसथ्याग्नि का सम्बन्ध गृह्यकर्मों के अनुष्ठान से है। इसमें सप्त पाकयज्ञ (औपासन होम प्रभृति) तथा संस्कार आदि का सम्पादन होता है। श्रौताग्नि में हविर्याग (अग्निहोत्र प्रभृति) तथा सोमयाग (अग्निष्टोम/ज्योतिष्टोम प्रभृति) आदि कर्मों का अनुष्ठान होता है। दर्शपौर्णमास में यजमान दम्पती अतिरिक्त पाँच ऋत्विक् अपेक्षित होते हैं, जबकि सोमसंस्थाओं के सम्पादन गणक्रम से प्रत्येक में चार-चार इस प्रकार कुल सोलह ऋत्विक् होते है तथा प्रत्येक आहिताग्नि होना अनिवार्य है। सोमसंस्थाओं से आगे द्वादशाह, एकाह, अहीन, सत्र, क्रतु तथा अश्वमेध, राजसूय जैसे दीर्घकाल-साध्य प्रयोग भी होते हैं, जिनमें विशेष प्रयोगों को छोड़कर सोम संस्थाओं के कर्मों की ही पुनरावृत्ति होती है तथा इनका अनुष्ठान एक दिवस प्रभृति सहस्र दिवस अथवा इससे भी अधिक दीर्घ कालावधि तक होता है। इन वैदिक प्रयोगों में कई तथ्य छिपे रहते हैं, जिनकी जानकारी प्रयोग करने पर ही सम्भव है। वैदिक प्रयोग भारतीय ज्ञान-सम्पदा की निधि हैं।

6.6 शब्दावली

प्रकृति	–	जहाँ समस्त अंगों का उपदेश हो
विकृति	–	जहाँ विशिष्ट अंगों का उपदेश हो
अपर	–	दूसरा
स्थालीपाक	–	स्थाल्यां पचति इति स्थालिका में तैयार
चरु	–	यागार्थ गार्हपत्याग्नि पर पकाया गया ओदन
पुरोडाश	–	याग में देवतार्थ आहुति के लिए यव अथवा व्रीहि के आटे का हविर्द्रव्य के रूप में पुरोडाश बनाया जाता है
पिष्ट	–	पिसा हुआ चूर्ण/आटा

गार्हपत्याग्नि	–	गार्हपत्य संज्ञक वृत्ताकार खर जो कि पश्चिम दिशा में प्राप्त होने वाली अग्नि
दक्षिणाग्नि	–	दक्षिण दिशा में अर्धवृत्ताकर खर में प्राप्त होने वाली अग्नि
आहवनीयाग्नि	–	पूर्व दिशा में विद्यमान समचतुरस्र खर में प्रज्वलित अग्नि
सभ्याग्नि	–	ईशान कोणस्थ वृत्ताकार खर में प्राप्त स्मार्ताग्नि
आवसथ्याग्नि	–	आग्नेय कोणस्थ वृत्ताकार खर में प्राप्त स्मार्ताग्नि
अपसव्य	–	जहाँ यज्ञोपवीत का स्कन्ध परिवर्तन कर/पितृतीर्थ से कार्य हो
अतिदेश	–	दूसरे स्थान से प्राप्त नियम
श्रपण	–	पकाना/अग्नि में तपाना
संज्ञपन	–	श्वासावरोध कर अवदानोद्देश्यक प्राण हरण करना
अन्वाहार्य	–	चार ऋत्विजों की तृप्तिपर्यन्त भोज्य पक्वोदन

6.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. यज्ञतत्त्वप्रकाश, मोतीलाल बनारसीदास।
2. कात्यायन यज्ञपद्धति विमर्श, मनोहरलाल द्विवेदी, राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, नई दिल्ली।
3. वैदिक साहित्य और संस्कृति, पं. बलेदव उपाध्याय, शारदा प्रकाशन, वाराणसी।

6.8 अभ्यास प्रश्न

1. यज्ञ के तात्पर्य को स्पष्ट करते हुए प्रमुख विभागों का संक्षेप में वर्णन कीजिए।
2. पाक संस्था के अन्तर्गत परिगणित यागों का नामोल्लेख करते हुए किसी एक का संक्षिप्त परिचय दीजिए।
3. हविर्यज्ञ के अन्तर्गत चातुर्मास्य के पर्वों का उल्लेख कीजिए।
4. हविर्यज्ञ के वैशिष्ट्य पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।
5. सोमसंस्था के अन्तर्गत अग्निष्टोमादि के प्रकृति–विकृति स्वरूप को स्पष्ट कीजिए।
6. सोमयाग के माहात्म्य का वर्णन कीजिए।
7. श्रौतयागों के स्वरूप पर संक्षिप्त टिप्पणी कीजिए।